



THE IMPORTANCE OF ANNAPAN VIDHI OF AYURVEDA SCIENCE IN PRESENT TIME

वर्तमान समय में आयुर्वेदिक आहारविधि का महत्व

**Dr. KAMLESH
KUMAR SHARMA**

PROFESSOR, DEPTT. OF KRIYA SHARIR, GOVERNMENT, AKHAN-
DANAND AYURVED COLLEGE, AHMEDABAD

ABSTRACT

अन्नपान या आहार का आयुर्वेद विज्ञान के संहिता ग्रन्थों में विस्तृत रूप में वर्णन मिलता है। जिसका अध्ययन सामान्य रूप से भी कर लेने पर और उनके अनुरूप अन्नपान या आहार लेने पर आहार अपने लक्ष्य अर्थात् उसमें स्थित पोषक अंश सम्पूर्ण रूपेण मानव शरीर में अवशोषित होकर शरीर गुणों के अनुरूप परिवर्तित हो जाते हैं तथा शरीर को स्वस्थ बनाए रखते हैं। आयुर्वेदिक आचार्यों ने अन्नपान की शरीर में स्थित प्राण से तुलना की है अर्थात् आचार्यों की दृष्टि में अन्नपान मानव के लिए इतनी अधिक महत्ता रखता है कि उसकी तुलना शरीर में स्थित प्राणों से की गई है। जिस प्रकार शरीर में जीवन को बनाये रखने के लिए प्राणों की निरन्तर आवश्यकता होती है उसी तरह शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिए नियमानुसार व अच्छी तरह गुणावगुणों का विचार करके शास्त्रोक्त विधि से अन्नपान का ग्रहण करना चाहिए।

हमने यहाँ इस निबन्ध में यह प्रयास किया है कि आयुर्वेद विज्ञान से सम्बन्धित विधि विधान का अध्ययन करके उन्हें सरल व सामान्य समझ रखने वाला व्यक्ति भी उन्हें सरलता से समझ कर पालन कर सके, ऐसा प्रयास किया गया है।

KEYWORDS : प्राण संज्ञक, हितकर, कफादि, आहारजन्य, स्वभाव, प्रमाण

परिचय -

आयुर्वेद विज्ञान में अन्नपान की तुलना 'प्राण' अर्थात् जीवन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व से की गई है।

इष्टवर्णरसगन्धस्पर्श विधिविहितमन्नपानं प्राणिनां प्राणिसंज्ञकानां प्राणमाचक्षते कुशलाः, प्रत्यक्षफलदर्शनात् ; तदिन्द्रिया ह्यन्तरगनेः स्थितिः तत् सत्त्वमूर्जयति तच्छरीरधातुव्यूहकरबलवर्णान्द्रियप्रसादकरं यथोक्तमुपसेव्यमानं, विपरीतमहिताय संपदयते।
च० सू० 3/27

जो आहार शास्त्रोक्त विधि पूर्वक बनाया गया हो तथा जिसका गंध वर्ण रस तथा स्पर्श मन के अनुकूल हो वह अन्नपान जीवधारियों के लिए प्राण संज्ञक है ऐसा विशेषज्ञों का मत है। आयुर्वेद मतानुसार स्वच्छ विधि से बने हुए अन्नपान का सेवन करने पर वह शरीर की सम्पूर्ण रस रक्तादि धातुओं के समुदाय, वर्ण बल, एवं इन्द्रियों में प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला अर्थात् उनका पोषक, वृद्धिकर तथा अन्ततः मन में प्रसन्नता उत्पन्न करके बल प्रदान करने वाला होता है। इस अन्नपान रूपी काष्ठ के रहने पर ही शरीर में अग्नि निरन्तर कार्यकर स्थिति में रहती

है जिससे खाए हुए आहार का निरन्तर पाचन होकर वह शरीर गुणों के रूप में परिवर्तित होकर शरीर की वृद्धि करने वाला होता है जिससे मानव स्वस्थ व उत्साहपूर्ण रहकर अपने दैनन्दिन कार्यों का सम्पादन कर सकता है।

हितकर तथा अहितकर आहार-

आयुर्वेद विज्ञान के अनुसार जल अपने स्वभाव से अन्न को गीला करता है तथा शारीरिक धातुओं में क्लेद उत्पन्न करता है। लवण रस वाले पदार्थ कफादि की कठोरता को पतला करते हैं। क्षारयुक्त पदार्थ पाचन का कार्य करते हैं तथा साथ ही शरीर की दृष्टि एवं शुक्र धातु का नाश भी करते हैं। मधु अर्थात् शहद शरीर में दूटे हुए स्थान को जोड़ने का कार्य करता है। घृत अर्थात् घी या घी से बने पदार्थ शरीर में स्नेहन अर्थात् चिकनाई उत्पन्न करते हैं। आयुर्वेदिक आचार्यों ने दूध को जीवनीय अर्थात् जीवन को उत्पन्न करने वाला अर्थात् शरीर को निरन्तर बनाये रखने में महत्वपूर्ण कारक बताया गया है। दही शीथ अर्थात् सूजन उत्पन्न करता है। खट्टा अनार व आंवले को छोड़कर प्रायः सभी अम्लरसयुक्त पदार्थ पित्त दोष की वृद्धि करने वाले होते हैं। शहद, पुराने चावल, जौ, गेहूँ को छोड़कर सभी मधुर रस युक्त पदार्थ कफ दोष को बढ़ाने वाले होते हैं।

अनुपान:-

यद्दोहारगुणैः पानं विपरीतं तदिष्यते।

अन्नानुपानं धातूनां दृष्टं यन्न विरोधि च ॥
च० सू० 319/27

जो पेय पदार्थ लिए गए आहार के गुणों से विपरीत गुण वाला होता है वह अन्न द्रव्यों का उचित अनुपान माना गया है किन्तु यह अनुपान रसरक्तादि धातुओं का विरोधी नहीं होना चाहिए।

शरीर में वात दोष की अधिकता से उत्पन्न रोगों में स्निग्ध और उष्ण अनुपान, पित्त दोष से उत्पन्न रोगों में मधुर और शीतल, कफ दोष से उत्पन्न रोगों में रुक्ष और उष्ण अनुपान का सेवन करना हितकर होता है। रसरक्तादि धातुओं के क्षय से उत्पन्न रोगों में मांसरस को श्रेष्ठ अनुपान माना गया है। उपवास धारण किये हुए व्यक्तियों के लिए, अधिक बोलने से थके हुए, रास्ता चलने तथा आन्धी से थके हुए, अधिक मैथुन व धूप के अधिक सेवन से थके हुए व्यक्तियों के लिए आयुर्वेदिक आचार्यों ने दूध को श्रेष्ठ अनुपान बताया है। स्थूल अर्थात् मोटे व्यक्तियों को पतला बनाने के लिए मधु अर्थात् शहद और जल का अनुपान श्रेष्ठ माना गया है।

अथानुपानकर्मगुणान् प्रवक्ष्यामः - अनुपानं तर्पयति, प्रीणयति, ऊर्जयति, बृंहयति, पर्याप्तिमभिनिर्वर्तयति, भुक्तमव-सादयति, अन्नसंघातं भिनत्ति, मार्दवमापादयति, क्लेदयति, जरयति, सुखपरिणामितामाशुव्यवायितां चाहारस्योपजनयतीति।

च० सू० 325/27

अनुपान के उचित समय पर उपयोग करने से यह व्यक्ति को शीघ्र तृप्त कर देता है तथा उचित अनुपान आयु व शरीर में बल की वृद्धि के लिए किए गए भोजन को सुखपूर्वक पचाता है।

आहारोपरान्त जल पीने व न पीने योग्य व्यक्ति-

जो व्यक्ति हिकका, श्वास, कास रोग से ग्रस्त हों उन्हें भोजन के बाद जल नहीं पीना चाहिए। जिन रोगियों में जत्रु के ऊपरी भाग अर्थात् कण्ठ प्रदेश से ऊपरी हिस्से में वात प्रकोप से उत्पन्न रोग हो गये हों ऐसे रोगियों को भोजन के बाद जल नहीं पीना चाहिए। जो व्यक्ति अधिक बोलने व गाने वाले हों व अधिक अध्ययन कर रहे हों उन्हें भोजन के बाद जल नहीं पीना चाहिए। अगर ऐसे व्यक्ति भोजन के तुरन्त पश्चात् जल का सेवन करते हैं तो वह जल वक्ष प्रदेश व कण्ठ प्रदेश में रहने वाले आहारजन्य स्नेह को नष्ट कर देता है और सम्बन्धित उपद्रवों को उत्पन्न करता है।

अन्नपान विषयक परीक्ष्य भाव -

चरः शरीरावयवाः स्वभावो धातवः क्रिया।
लिङ्गं प्रमाणं संस्कारो मात्रा चास्मिन् परीक्ष्यते ॥
च० सू० 331/27

आयुर्वेद विज्ञान के मतानुसार अन्नपान या आहार का प्रयोग करते समय चर (देश) शरीर के अंग, स्वभाव, रस-रक्तादि धातुएं, क्रिया, लिंग, प्रमाण, संस्कार व मात्रा की परीक्षा की जाती है। आहार से सम्बन्धित उपरोक्त भावों की परीक्षा करने के बाद अगर व्यक्ति भोजन का उपयोग करता है तो ऐसा अन्नपान पाचनक्रिया में सरल तथा शरीरोपयोगी होता है।

1. चर परीक्षा -

जलकर प्राणी या जो जीव गुरु अर्थात् भारी वस्तुओं का आहार करते हैं उनका मांस गुरु होता है तथा जो प्राणी लघु अर्थात् हल्की वस्तुएं खाते हैं या जो प्राणी आकाश प्रदेश या जंगल में उत्पन्न होते हैं या आवास करते हैं या आना जाना करते हैं उन प्राणियों का मांस स्वाभाव से लघु अर्थात् हल्का होता है। ऐसे लघु आहार का सरलता से पाचन व अवशोषण होता है।

2. शारीरिक अंगों के अनुसार परीक्षा -

आचार्य चरक मतानुसार किसी प्राणी के जांघ के मांस की अपेक्षा कंधे का मांस, कंधे के मांस की अपेक्षा छाती व पेट का मांस, छाती व पेट के मांस की अपेक्षा शिरःप्रदेश का मांस गुरु अर्थात् पचने में भारी होता है।

3. द्रव्यों की स्वभावतः परीक्षा -

उदाहरण स्वरूप मूंग की दाल स्वभाव से लघु अर्थात् पचने में हल्की होती है एवं उड़द की दाल गुरु अर्थात् उसके पचने में समय लगता है। व्यक्ति को द्रव्यों के ऐसे स्वभाव को जानने का प्रयास करना चाहिए और उसी तरह आहार का सेवन करना चाहिए।

4. रस रक्तादि धातुओं के अनुसार परीक्षा-

धातुनां शोणितार्दीनां गुरुं विद्यात् यथोत्तरम्।
अलसेभ्यो विशिष्यन्ते प्राणिनो ये बहुक्रियाः॥

च० सू० 337/27

रस रक्तादि धातुओं में उत्तरोत्तर धातुएं भारी होती हैं अर्थात् रस धातु से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा तथा मज्जा से शुक्र धातु भारी होती है।

5. क्रिया के अनुसार परीक्षा ;

आलसी जीव की अपेक्षा अधिक कार्य करने वाले जीव का मांस हल्का होता है।

6. लिंग के अनुसार परीक्षा :-

एक ही लिंग (जाति) के प्राणीओं में पुरुष का मांस भारी तथा स्त्री का मांस हल्का होता है।

7. प्रमाण के अनुसार परीक्षा :-

एक ही जाति में प्रमाण के अनुसार अन्तर होता है जैसे कि जिन प्राणीओं का शरीर बड़ा होता है, मोटा होता है; उनका मांस भारी तथा जिनका शरीर छोटा होता है उनका मांस हल्का होता है जो आसानी से पच जाता है।

8. संस्कार परीक्षा -

गुरुणां लाघवं विद्यात् संस्कारात् सविपर्ययम्।
ब्रौह्मलोजा यथा च स्युः सक्तूनां सिद्धपिण्डिकाः॥
च० सू० 339/27

किसी भी द्रव्य विशेष में संस्कार कर्म द्वारा उसके गुणों में परिवर्तन किया जा सकता है अर्थात् अगर कोई द्रव्य पचने में भारी या देर से पचता है तो संस्कार द्वारा उसे लघु या हल्का बनाया जा सकता है एवं लघु द्रव्य को भारी बनाया जा सकता है।

9. मात्रा के अनुसार परीक्षा -

अल्पादाने गुरुणां च लघूनां चातिसेवने।
मात्राकारणमुद्दिष्टम् द्रव्याणां गुरु लाघवे॥
गुरुणामल्पमादेयं लघूनां तृप्तिरिष्यते।
मात्रां द्रव्याणि अपेक्षन्ते मात्रा चाग्निमपेक्षते॥
च० सू० 41-340/27

आयुर्वेद विज्ञान के मतानुसार व्यक्ति को अन्नपान या आहार लेते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि भारी आहार द्रव्यों को कम मात्रा में लेने पर लघुता अर्थात् आसानी से पचने वाले एवं स्वभावतः

हल्के आहार को अधिक मात्रा में लेने से भारीपन उत्पन्न हो जाता है अर्थात् वह देर से पचता है। इस प्रकार आचार्यों ने लघुता एवं गुरुता का विचार मात्रा से सम्बन्धित बताया है। इस तरह भोजन करते समय व्यक्ति को चाहिए कि स्वभावतः या संस्कारतः भारी भोजन को कम मात्रा में लेना चाहिए तथा जो द्रव्य हल्के हों उन्हें पूर्ण तृप्ति तक करना चाहिए। सम्पूर्ण जगत में उपलब्ध सभी आहार द्रव्य चाहे वे गुरु या लघु हों, मात्रा की अपेक्षा करते हैं हैं और मात्रा जठराग्नि की अपेक्षा करती है अर्थात् आहार को पकाने वाली अग्नि कितनी शक्तिवान है या क्षीण जिससे व्यक्ति द्वारा लिए गए मात्रा या अमात्रायुक्त आहार को पचाया जा सकता है।

निष्कर्ष -

प्राणाः प्राणभूतामन्नमन्नं लोकोभिधावति।
वर्णः प्रसादः सौस्वर्यं जीवितम् प्रतिभा सुखम्॥
तृष्टिः पुष्टिः बलं मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्॥
लौकिकं कर्म यद् वृत्तौ स्वर्गतौ यच्च वेदिकम्॥
कर्मापवर्गं यच्चोक्तं तच्चाप्यन्ने प्रतिष्ठितम्।
च० सू० 350- 349/27

सभी जीवधारियों के प्राणों का आधार अन्न है इसलिए सम्पूर्ण संसार अपने सारे प्रयत्न अन्न के लिए ही करता है अर्थात् अन्न की ओर दौड़ता है। मानव शरीर का वर्ण, मन में प्रसन्नता की स्थिति, जीवन, प्रतिभा, सुख, सन्तोष, स्वर्ग की सुन्दरता, शरीर का पोषण ऊर्जायुक्त अनुभव होना, धारणाशक्ति आदि सभी भाव अन्न के ऊपर ही निर्भर हैं। शारीरिक क्रियाव्यापार के लिए जो लौकिक कर्म हैं, स्वर्ग जाने के लिए जो वैदिक प्रयत्न किये जाते हैं और मोक्ष प्राप्ति के लिए जो कर्म बताये हैं सभी क्रियाकलाप अन्न में ही प्रतिष्ठित हैं। इस तरह यह सम्पूर्ण संसार अन्न के द्वारा ही चलता है।

सहायक पुस्तकः

1. चरक संहिता प्रथम भाग, डा डॉक्टर गंगा सहाय पाण्डेय चौखम्भा संस्कृत संस्थान, विद्योतिनी हिन्दी टीका, 1983
2. चरक संहिता द्वितीय भाग, डॉक्टर ब्रह्मा नन्द त्रिपाठी, चौखम्भा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी 1994,
3. सुश्रुतसंहिता, अम्बिकादत्त शास्त्री, व्याख्याकार, आयुर्वेद तत्व सन्दीपिका, 1987
4. शारङ्गधरसंहिता, प्रोफेसर के आर श्रीकान्त मूर्ति, चौखम्भा ओरियंटलिया, वाराणसी, 1984
5. अष्टाङ्गहृदयम्, लाल चन्द वैद्य व्याख्याकार, सर्वाङ्गसुन्दरी व्याख्या, 1963
6. निरञ्जन देव आयुर्वेदालङ्कार, प्राकृत अग्नि विज्ञान, आयुर्वेद एवं तिब्बती अकादमी, 1974
7. निरञ्जन देव आयुर्वेदालङ्कार, प्राकृत दोष विज्ञान, आयुर्वेद एवं तिब्बती अकादमी, 1971
8. हरिदत्त शास्त्री, देहधात्वग्नि विज्ञानम्, मोतीलाल बनारसी दास, 1977
9. आयुर्वेदीय क्रिया शारीर, वैद्य रणजित राय देसाई, श्री वैद्य नाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड, नागपुर, 1982